International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(1): 72-74

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(1): 72-74
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 02-11-2020
Accepted: 11-12-2020

डॉ0 प्रीति त्रिपाठी
पता – ए 3 जिला पंचायत निवास, कैसरबाग लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 प्रीति त्रिपाठी
पता – ए 3 जिला पंचायत निवास, कैसरबाग लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

'कारण कार्य सम्बन्धः प्रतीत्यसमुत्पाद'' बुद्धचरितम् के आलोक में

डॉ0 प्रीति त्रिपाठी

सार–
भारतीय दर्शन में तार्किक जिज्ञासा की प्रवृत्ति रही है। मनीषियों की इसी जिज्ञासा के कारण सृष्टि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विमर्श होता रहा है। सृष्टि की जिज्ञासा के कारणता सिद्धान्त को विभिन्न दार्शनिकों ने अलग–अलग नाम दिया है। भारतीय दर्शन में दो तरह की दार्शनिक परम्पराएँ दृष्टिगोचर होती है। 1. आस्तिक दर्शन 2. नास्तिक दर्शन। भारतीय परम्परा में इन आस्तिक एवं नास्तिक पदों को परिभाषित करने के आधार वेद प्रामाण्य की स्वीकृति एवं अस्वीकृति से है। नास्तिक को परिभाषित करते हुए कहा गया है ''नास्तिकों वेदनिन्दकः''। इस प्रकार सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, पूर्व एवं उत्तर मीमांसा ये छः आस्तिक दर्शन है एवं चार्वाक जैन एवं बौद्ध नास्तिक दर्शन है। प्रस्तुत शोधपत्र में हम सभी दर्शन के कारणता सिद्धान्त पर विहंगम दृष्टि डालते हुए बौद्धदर्शन के कारणता सिद्धान्त पर विशेष चर्चा करेंगे जिसका उल्लेख महाकवि अश्वघोष ने अपने ग्रन्थ बुद्धचरितम् में 'प्रतीत्यसमुत्पाद' नाम से किया है।

संकेताक्षरः– सत्कार्यवाद, असमवायिकारण, विवर्तवाद, निमित्तकारण, अन्वयव्यतिरेक, विशिष्टाद्वैत।

प्रस्तावना
प्रायः सभी दार्शनिकों ने कारण–कार्य सिद्धान्त की चर्चा अपने ग्रन्थ में अवश्यमेव की है। प्राचीनतम भारतीय दार्शनिक महर्षि कपिल ने सांख्यदर्शन में कारणता सिद्धान्त को सत्कार्यवाद कहा है। इनके अनुसार प्रत्येक कार्य अपने कारण रूप में सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। ईश्वरकृष्ण के सांख्यकारिका में सत्यकार्यवाद के प्रतिपादनार्थ निम्नलिखित कारिका उल्लिखित है–

असदकरणादुपादान ग्रहणात् सर्वसंभवाभावात्।
शक्तस्यशक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। [1]

महर्षि पतंजलि भी योग दर्शन में सांख्य से ही अभिमत है। वे सांख्य के पच्चीस तत्वों के साथ 'ईश्वरः' नामक छब्बीसवां तत्व भी मानते है इसलिए इसे सेश्वर सांख्य कहते है। सांख्योग के बाद न्याय दर्शन में आचार्य कपिल ने कारणता पर विचार किया है तर्कभाषा में केशवमिश्र ने कारण का लक्षण लिखा है–यस्य कार्यात् पूर्वभावो नियतो–अनन्यथासिद्धश्च तत्कारणम्। [2] इस प्रकार कारण के तीन लक्षण है–पूर्ववर्तित्व, नियतत्व एवं अनन्यथासिद्धत्व। नव्य नैयायिकों ने कारणता सिद्धान्त का आरम्भवाद अथवा असत्कार्यवाद कहा है।
महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन में असंख्य परमाणुओं को जगत का मूल कारण माना है। इनके अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान नही रहता है। यह सर्वथा एक नवीन उत्पत्ति होती है, परन्तु कारण नष्ट नही होता है, उसकी सत्ता बनी रहती है। न्याय–वैशेषिक मत में कारण तीन प्रकार के होते है– समवाय, असमवाय, निमित्तकारण।
शंकराचार्य ने अद्वैत वेदान्त में सत्कार्यवाद का समर्थन किया है। उनके अनुसार यह सम्पूर्ण जगत मिथ्या है। शंकर ने विवर्तवाद के आधार पर जगत को ब्रह्म का विपर्यास माना है। उन्होनें कहा है–''जगत न तो उत्पन्न होता है और न विकसित होता है, अपितु केवल प्रतीत होता है जैसे रज्जु में सर्प की प्रतीति'' [3]
विशिष्टाद्वैत दर्शन में आचार्य रामानुज ने कहा है कि प्रत्येक कार्य अपने उपादान कारण में पहले से विद्यमान रहता है, और परिणामवाद को स्थापित करते हुए कहा है कि प्रत्येक कार्य कारण का ही परिणाम होता है। कारण ब्रह्म, कार्य ब्रह्म की सृष्टि पूर्व अवस्था है। ब्रह्म की कार्यावस्था उसकी कारणावस्था से भिन्न है।

श्रीमद्भगवद्गीता में कृष्ण ने कहा है कि मेरी (ईश्वर की) अध्यक्षता में प्रकृति सम्पूर्ण चराचर जगत की उत्पत्ति करती है–

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।
हेतुर्नानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते।। [4]

पुनः गीता में कहा गया है कि सम्पूर्ण शरीर में ईश्वर का अंश विद्यमान है–

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। [5]

भौतिकवादी दर्शन चार्वाक सृष्टि की उत्पत्ति का कारण चार तत्वों को मानता है– पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि। इस प्रकार जड़तत्व से ही चार्वाक सम्पूर्ण सृष्टि का उद्भव एवं विकास मानते है। जैन दर्शन के अनुसार भौतिक पदार्थ जो इन्द्रियों से जाने जाते है, वे अणुओं से निर्मित है। दो या अधिक अणुओं के संयोग से स्कन्ध या संघात पुद्गल उत्पन्न होते है। पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु स्कन्ध पुद्गल है और सम्पूर्ण जगत इन्हीं स्कन्धों से निर्मित है। अणु पुद्गल कारण रूप है और स्कन्ध पुद्गल कार्य रूप। [6]
प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध दर्शन का आधारभूत सिद्धान्त है। यह सापेक्ष कारणता का सिद्धान्त है। इसे 'The doctrine of dependent origination' अर्थात् 'आश्रित उत्पत्ति का सिद्धान्त' कहा जाता है। महाकवि अश्वघोष ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'बुद्धचरितम्' के चौदहवें सर्ग में 'प्रतीत्यसमुत्पाद' सिद्धान्त का विस्तार से वर्णन किया है। मार को पराजित करने के बाद ज्ञानिश्रेष्ठ बुद्ध समाधिस्थ हुए और रात्रि के प्रथम याम में अपने पुनर्जन्म की परम्परा का स्मरण किया। द्वितीय याम की साधना में उन्होनें दिव्यचक्षु से संसार के प्राणियों के शुभ तथा अशुभ कर्मो के फल पर विचार किया। अनेक योनियों से उत्पन्न प्राणियों को दुःख भोगते देखकर भगवान बुद्ध के मन में बहुत करूणा उत्पन्न हुयी। उन्होंने समस्त जीव लोकों को कदली–स्तम्भ के समान निःसार देखा और विचार किया कि ये प्राणी बार–बार जन्म लेते है, मरते है, पुनः जन्म लेते है, इनको न कहीं सुख मिलती है न शान्ति।'

इमे जीवा न कुत्रापि प्राप्नुवन्ति शमं सुखम्।
जायन्ते चैव जीर्यन्ते, म्रियन्ते च मुहुर्मुहुः।।

इनकी दृष्टि में निश्चित रूप से काम एवं मोहरूप अज्ञानान्धकार से आवृत्त होने के कारण कोई उचित मार्ग दिखाई नही पड़ता है। यह समस्त जगत सत्यता से हीन है। इसका अस्तित्व केवल जरा–मृत्यु का ही सूक्ष्म कारण मात्र है।
उन ज्ञानिश्रेष्ठ ने जब इस सत्य का सूक्ष्म निरीक्षण किया तो उनको ज्ञात हुआ कि जन्म का होना ही जरा–मृत्यु का कारण है। जिस प्रकार सिर के रहने पर ही सिर पर पीड़ा सम्भव है, वृक्ष रहने पर ही उसका काटा जाना सम्भव है, उसी प्रकार जन्म होने से जरा–मरण इत्यादि सम्भव है।

जन्म का हेतु कर्म एवं भव :–जन्म के कारण पर विचार करते हुए उन्होनें पाया कि कर्म एवं भव ही जन्म का हेतु है। उन्होनें ध्यान लगाकर कर्म से ही संसार की समस्त प्रवृत्ति देखी। इस प्रवृत्ति में न किसी स्रष्टा का हाथ है न किसी प्रकृति का सहयोग।

1. निस्सारमेतत् सर्वं वै अस्यास्तित्वं नु केवलम्।
   जरामरण रोगाणां हेतुरेवेत्यचिन्तयत्।। [7]
2. सत्यस्यान्तः प्रविश्यायं बुबुधे ज्ञानिषूत्तमः।
   जन्मनः सत्तया हेतौ जरा–मृत्यु न चान्यथा।। [8]
3. ततः कर्म भवच्चैव कारणं दृष्टवानसौ। [9]

किसी अभाव से यह प्रवृत्ति होती है न किसी आत्मा से। अकारण भी इस प्रवृत्ति को नही माना जा सकता। जैसे बॉस की पहली गांठ युक्तिपूर्वक काट देने पर शेष सभी पोर सरलता से कट जाती है उसी प्रकार जन्म का हेतु ज्ञात होने पर मुनि के ज्ञान में वृद्धि हो गयी।

भव का हेतु उपादान– तदनन्तर मुनि ने भव के ज्ञान हेतु ध्यान लगाया। तब उनको इस भव का हेतु उपादान ज्ञात हुआ। जैसे काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जीवन में विविध शीलव्रतों के कामभोगों के, आत्मवाद और सम्यग्दृष्टि के ग्रहण करने से यह उपादान होता है। [10]

उपादान का हेतु तृष्णा– इस उपादान का भी कोई हेतु होगा। इस पर विचार करने पर उनको इसका एकमात्र हेतु तृष्णा ही ध्यान में आया। जैसे अग्नि का एक लघुकण भी वायु की सहायता से समस्त जंगल जला देने की क्षमता रखता है वैसे ही तृष्णा से युक्त काम का यही कर्मरूप महापापमय जंगल बन जाता है।

वेदना तृष्णा का हेतु– यह तृष्णा किस हेतु से उत्पन्न होती है इस पर ध्यानपूर्वक विचार करने पर मुनि को तृष्णा का हेतु वेदना (इन्द्रिय एवं विषय के स्पर्श से होने वाली अनुभूति) को जाना। वेदनाओं से अभिभूत होकर ही मनुष्य तृप्ति हेतु प्रयास करता है, अन्यथा प्यास न होने पर कोई पुरूष जल पीने की इच्छा नही करता।

स्पर्श वेदना का हेतु– तदनन्तर उन जितेन्द्रिय मुनि ने पाया कि स्पर्श ही वेदना का मूल हेतु है। स्पर्श कहते है– इन्द्रिय विषय एवं मन के संयोग को। इस संयोग से वेदना वैसे ही उत्पन्न होती है जैसे दो अरणि एवं इन्धन के संयोग से अग्नि उत्पन्न होती है।

स्पर्श का हेतु षडायतन – तत्पश्चात् स्पर्श का कारण क्या है? इस पर विचार करते हुए उन लोकमर्मज्ञों में श्रेष्ठ मुनि ने छह आयतन (काय, चक्षु, श्रोत, घ्राण, जिह्वा एवं मन) को स्पर्श का हेतु पाया। अन्धा व्यक्ति घर आदि वस्तुएं नही देख पाता है क्योंकि नेत्र न होने से वस्तु का मन से संयोग नही हो पाता है। दृष्टि होने पर ही ऐसा होता है अतः षडायतन ही स्पर्श का कारण है।

षडायतन का हेतु नामरूप– तदनन्तर उन मुनि ने षडायतन के हेतु पर ध्यानपूर्वक विचार और उन प्रतीत्यसमुत्पादज्ञ ने नामरूप को षडायतन का हेतु जाना। जैसे किसी वृक्ष के होने पर ही स्कन्ध, शाखा, पत्र आदि सम्भव है वैसे ही नामरूप के होने पर ही छह आयतन सम्भव हो सकते हैं।

नामरूप का हेतु विज्ञान– तदनन्तर उन मुनि को नामरूप के हेतु के विषय में विचार हुआ। तब उन ज्ञानपारगंत ने विज्ञान (संज्ञा–चेतना) को ही उसका एकमात्र कारण समझा, क्योंकि विज्ञान का उदय होने पर नामरूप सम्भव है। जैसे लोक में बीज का सम्यक विकास होने पर उससे अंकुर की उत्पति संभव है।

विज्ञान का हेतु नामरूप– विज्ञान का हेतु कौन है? इस पर विचार करने पर उनको ध्यान आया कि नामरूप का आधार लेकर ही विज्ञान की उत्पत्ति सम्भव है। इस प्रकार निमित्त एंव नैमित्तिक का क्रम समझकर महर्षि का चित्त उनके द्वारा स्थिर किए गए विचारों पर ही चिन्तन करता रहा, अन्यत्र चिन्तन से निरूद्ध रहा।
उन्होनें चिन्तन किया कि विज्ञान प्रत्यय है जिससे नामरूप उत्पन्न होता है तथा नामरूप ऐसा आधार है जिस पर विज्ञान आश्रित है। जैसे नौका जल में पुरूष को ढोती है और स्थल पर पुरूष नौका को ढोता है, उसी प्रकार विज्ञान एवं नामरूप भी एक दूसरे के हेतु

है। जैसे अग्नितत्व लौह को तपाने की सामर्थ्य रखता है वैसे ही नामरूप एवं विज्ञान का परस्पर कार्यकारण सम्बन्ध है।

इसी प्रकार उन्होनें समझ लिया कि विज्ञान से नामरूप का उदय होता है नामरूप से आयतन उत्पन्न होते है तथा आयतनों से स्पर्श का उदय होता है। स्पर्श से वेदना, वेदना से तृष्णा, तृष्णा से उपादान और उपादान से भव से जाति और जाति से जरा–मरण उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उन्होनें सम्यक् रीति से समझ लिया कि प्रत्ययों (हेतुओं) से संसार की उत्पत्ति होती है।

तद्नन्तर उनको यह भी दृढ़ निश्चय हो गया कि जन्म का नाश से जरा–मरण का निरोध का होता है। भव विनाश से स्वयं जन्म निरूद्ध हो जाता है तथा उपादान निरोध से भव–निरोध निश्चित है। पुनः तृष्णा के निरोध से उपादान का निरोध हो जाता है और वेदना के अभाव से तृष्णा का अभाव हो जाता है।

उसी प्रकार नामरूप का नाश हो जाने पर छह आयतनों का विनाश अवश्यंभावी है, और विज्ञान का निरोध होने पर नामरूप का नाश हो जाता है। तथा संस्कारों के निरोध से विज्ञान का निरोध सर्वथा सम्भव है। इस प्रकार महर्षि ने ध्यानपूर्वक इन पारस्परिक कारणों को जानकर समझ लिया कि अविद्या के सर्वथा अभाव से संस्कारों का भी निरोध हो जाता है।

संधर्व सूचि

1. ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका–9
2. केशव मिश्र – तर्कभाषा।
3. ब्रह्मसूत्रभाष्य 2/1/9
4. भगवद्गीता, अध्याय 9/10
5. भगवद्गीता अध्याय 15/07
6. भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा पृष्ठ 93
7. बुद्वचरितम् 14:52
8. बुद्वचरितम् 14:54
9. बुद्वचरितम् 14:55
10. बुद्वचरितम् 14:58